जुलाई १९९० हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

निंदा हो या प्रशंसा

राजगृह के महाराज बिम्बिसार द्वारा दान दिए गए वेणुवन में अथवा अन्य किसी विहार में वर्षावास बिताकर भगवान देश-प्रदेश की धर्मचारिका पर निकल पड़ा करते थे। ऐसे ही अवसर का एक दृश्य हमारे सामने है।

पांच सौ भिक्षुओं के साथ भगवान राजगृह से नालंदा की ओर पैदल यात्रा पर निकले हैं। इस बड़े क़ाफ़िले के पीछे-पीछे दो परिव्राजक भी यात्रा कर रहे है। एक है आचार्य सुप्पिय और दूसरा है उसका अंतेवासी शिष्य माणवक ब्रह्मदत्त। सारे रास्ते इन दोनों में परस्पर विवाद चलता रहा।

गुरु परिव्राजक सुप्पिय अनेक प्रकार से भगवान की निंदा करता, उन पर मिथ्या दोषारोपण करता। श्रमण गौतम सर्वज्ञ नहीं हैं, अर्हंत नहीं हैं, लोगों को गलत रास्ते ले जानेवाले हैं, आदि-आदि। भगवान के सिखाए हुए धर्म की भी अनेक प्रकार से निंदा करता, उसे सदोष बताता। यह धर्म-शिक्षा अच्छी प्रकार से समझाई हुई नहीं है, मुक्ति की ओर ले जानेवाली नहीं है, आदि-आदि। भगवान के भिक्षु संघ की भी अनेक प्रकार से निंदा करता, उन पर मिथ्या दोषारोपण करता। यह भिक्षु संघ सुमार्ग गामी नहीं है, ऋजुमार्ग गामी नहीं है, आदि-आदि।

इसके विपरीत उसका तरुण शिष्य ब्रह्मदत्त अनेक प्रकार से भगवान की प्रशंसा करता, उनके गुणगान गाता। ये भगवान अर्हंत हैं, लोकविदु हैं, आदि-आदि। भगवान के बताए हुए धर्म की अनेक प्रकार से प्रशंसा करता, गुणगान गाता। यह सुआख्यात धर्म है, सांदृष्टिक है, आशुफलदायी है, मुक्ति तक ले जानेवाला है, आदि-आदि। भगवान के भिक्षु संघ की अनेक प्रकार से प्रशंसा करता, गुणगान गाता। यह भिक्षु संघ सुमार्ग गामी है, ऋजुमार्ग गामी है, शुद्ध चित्त है, आदि-आदि।

गुरु-शिष्य का यह कलह-विवाद सारे रास्ते चलता रहा। दोनों एक-दूसरे को अपना मंतव्य समझाने की कोशिश करते रहे, पर मतैक्य नहीं हो पाए।

गुरु सुप्पिय के मन में भगवान के प्रति असीम कटुता भरी है। उसका मन ईर्ष्या, द्वेषजन्य विकारों से जल-भुन रहा है। भगवान बुद्ध की सर्वत्र यशकीर्ति फैली है। काश्यप बन्धुओं सहित उनके एक हजार जटा-जटिल शिष्य जब से भगवान के अनुगामी बने, तब से उनकी प्रतिष्ठा दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती चली गयी। काश्यप बंधु लाखों मगधवासियों के पूज्य आचार्य रहे। अतः उनके लगभग सारे अनुयायी सहज ही भगवान बुद्ध के अनुयायी हो गए। स्वयं मगध नरेश बिम्बिसार भगवान का श्रावक शिष्य बन गया। उसकी श्रद्धा अपरिमित हो उठी, क्योंकि उसे स्वयं प्रभूत धर्मलाभ हुआ। उसके परिवार के अन्य अनेक लोग भी लाभान्वित हुए। सदाचार का जीवन जीना और मन को राग, द्वेष आदि विकारों से मुक्त रखने की शिक्षा तो अन्य आचार्य भी देते थे। परंतु उनके पास इन उपदेशों को क्रियान्वित करने के लिए कोई कारगर उपाय नहीं था, कोई वैज्ञानिक विधि नहीं थी। बहुत हुआ तो कोई कर्मकांडया कोई व्रत-उपवास या किसी दार्शनिक मान्यता का जंजाल साथ लगा दिया। पर सुनियोजित ढंग से मन की गहराइयों में उतर कर जड़ों तक अंतर्मन के स्वभाव को पलट देने की कोई असरकारक विधि नहीं दे पाए। विपश्यना के रूप में जब ऐसी विधि भगवान से मिली तो कट्टरपंथी अंधविश्वासियों को छोड़कर बाकी समझदार बुद्धिशाली लोग भगवान की ओर खिंचे हुए चले आए। इसी कारण भगवान बुद्ध की शिक्षा घर-घर में प्रवेश पाने लगी। हजारों की संख्या में लोग घरबार छोड़कर भगवान के भिक्षु संघ में सम्मिलित हो गए। लाखों गृहस्थ रहते हुए सद्धर्म के पंथ पर चलने लगे।

महाराज बिम्बिसार ने बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को अपना अत्यंत मनोरम वेणुवन दान दे दिया। उसका अनुकरण करते हुए अन्य राजपुरुष और सम्पन्न नागरिकों ने केवल एक राजगृह नगर में ही भगवान के लिए सत्रह विहार बनवा दिए, जिनमें कि निरंतर विकासशील बहुसंख्यक भिक्षु संघ निवास कर सके और धर्म निर्देशन द्वारा लोक कल्याण कर सके।

सारे मगध देश में भगवान बुद्ध और उनके भिक्षु संघ की मान प्रतिष्ठा बढ़ी तो अन्य सांप्रदायिक आचार्यों के लाभ सत्कार में कमी आने लगी। गणाचार्य वेलट्ठपुत्र संजय के प्रमुख शिष्य उपतिस्स (सारिपुत्र) और कोलित (मोग्गल्लान) ने अपने आचार्य को छोड़कर भगवान बुद्ध का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। इससे यह आचार्य कुल लगभग छिन्न-भिन्न ही हो गया।

भगवान बुद्ध द्वारा काल्पनिकता से दूर सांप्रदायिकता-विहीन अनुभूतिजन्य सच्चाइयों पर आधारित सत्य धर्म का प्रकाशन किए जाने पर अनेक संप्रदाय संस्थापक यशस्वी वयोवृद्ध संघी, गणी, गणाचार्यों की जनमान्यता क्षीण होने लगी। उनकी बाड़े-बंदी टूटने लगी। संभवतः परिव्राजक सुप्पिय उन्हें में से किसी एक का अनुयायी रहा होगा और इसी कारण उसके मन में भगवान बुद्ध और उनके भिक्षु संघ के प्रति ईर्ष्याजन्य कटुता भरी होगी।

दूसरी ओर उसका अंतेवासी ब्रह्मदत्त अभी युवा है। लगता है किसी दार्शनिक मान्यता अथवा संप्रदाय की जकड़न अभी उसे बांध नहीं पायी है। वह भगवान बुद्ध के ओजस्वी, तेजस्वी व्यक्तित्व से ही नहीं, बल्कि उनके द्वारा सहज, सरल भाषा में समझाए गए वैज्ञानिक धर्म के प्रति भी आकर्षित हुआ है और सौम्य, शांत भिक्षु संघ के प्रति भी। वह देखता है कि भगवान और उनके भिक्षु जब चलते हैं तो कैसे नपे-तुले कदमों में, शालीनतापूर्वक (ओक्खितचक्खू) नजर नीची किए हुए चलते हैं, जबकि अन्य संप्रदाय के संन्यासी किस उद्धतता से हाथ-पांव फटकारते हुए, आंखें फाड़कर इधर-उधर ताकते-झांकते हुए चलते हैं। शालीनता का नामोनिशान नहीं है उनमें। भगवान का भिक्षु संघ (तुण्हीभावो) याने मौन रहकर चलता है, जबकि यह लोग चलते हुए भी कितनी बातें करते हैं, कितने वाचाल रहते हैं। उनके मन की बेचैनी वाणी में प्रकट होती रहती है। भगवान के भिक्षु कितने अल्पेक्षु हैं, अपरिग्रही हैं, पहने हुए चीवर के अतिरिक्त केवल भिक्षापात्र हाथ में है, जबकि अन्य संप्रदायवादी संन्यासी जोड़ू-बटोरू हैं। कितने बर्तन-भांडे, कपड़े-लत्ते, और खाद्य-पेय पदार्थों का बोझ ढोए चलते हैं।

शिष्य माणवक ब्रह्मदत्त बुद्ध और धर्मसंघ का गुणगान गाते नहीं अघाता और गुरु परिव्राजक सुप्पिय उनकी निंदा करते नहीं थकता। सारे रास्ते दोनों में यह विवाद चलता रहा। राजगृह से नालंदा एक योजना की दूरी पर है। चलते-चलते इस काफिले ने आधा रास्ता तय कर लिया। महाराज बिम्बिसार ने इस पड़ाव पर अपनी यात्रा-विश्राम के लिए तथा क्रीड़ा-किलोलके लिए एक बड़ा राज-उद्यान बना रखा था। चारों ओर सुदृढ़ दीवारों से घिरा हुआ सुरक्षित उद्यान, जिसमें अनेक फल-फूलवाले छायादार वृक्ष लगे थे। भरे-पूरे कुँए-बावड़ी, तालाब-सरोवर आवश्यक पानी की पूर्ति करते थे। बिम्बिसार और उसके साथ आयी हुई वृहद् राज्यपरिषद, राजकर्मचारी तथा सुरक्षा सैनिकों के ठहरने के लिए अनेक आरामदेह भवन बने थे। सारे राज्य में ऐसे राजविश्रान्तिगृह स्थान-स्थान पर बने होंगे। इन्हें राजागार कहा जाता था। प्रस्तुत राजागार के मुख्यद्वार पर एक तरुण अम्बरुक्ख उगा था। इसीलिए इसका नाम अम्बलट्ठिक राजागार पड़ा।

लगता है श्रद्धालु बिम्बिसार ने संघ सहित भगवान बुद्ध के यात्रा-विश्राम हेतु इस प्रकार के राजागारों में ठहरने की सुविधा प्रदान कर

दी होगी। तभी हम देखते हैं कि दिन ढलते-ढलते भगवान और उनका भिक्षु संघ नालंदा और राजगृह के आधे रास्ते पर बने हुए इस अम्बलट्ठिक राजागार में रात्रि-विश्राम के लिए ठहर गए हैं। उनके पीछे-पीछे चले आनेवाले परिव्राजक और उसके शिष्य ने भी इस सुविधा का लाभ उठाया और वे भी वहीं ठहर गए। भगवान और भिक्षु संघ ने अपनी रात्रिचर्या सदा की भांति पूरी की, परंतु यह दोनों गुरु-चेले रात भर उसी मद्दे पर बहस-मुबाहस करते रहे।

नित्य-नियमानुसार रात्रि के प्रथम याम में भगवान ने स्नान करके कपड़े बदले और बुद्धासन पर बैठकर भिक्षुओं के साथ एक मुहूर्त ध्यान किया। सारे भिक्षु निःशब्द मौन होकर अधिष्ठान में बैठे। किसी के खांसने-खखारने तक की आवाज नहीं। शरीर में जरा भी हलन-चलन नहीं। सभी निष्कंप दीपशिखा की भांति निश्चल बैठकर ध्यान करते रहे। तत्पश्चात् भगवान ने उपदेश दिया। ध्यान की विधि पर कुछ प्रकाश डाला। जिन भिक्षुओं के प्रश्न थे, उनका उत्तर दिया। जिन्हें कोई उलझन थी, उनका समाधान किया। किसी किसी को विपश्यना विधि की अधिक गहराइयां समझाईं। यों रात्रि का प्रथम याम पूरा हुआ। सारे भिक्षु विश्राम करने चले गए।

भगवान अब दूसरे याम की चर्या में लग गए। सदा की भांति इस मध्यम याम में विभिन्न लोकों से आए हुए देव-ब्रह्माओं के प्रश्नों के उत्तर देते रहे, उन्हें धर्मदेशना देते रहे। ध्यान सिखाते रहे। यों रात्रि का दूसरा याम भी बीता।

सदा की भांति भगवान ने रात्रि के तीसरे याम के तीन विभाजन किए। पहले भाग में कुछ देर बाहर खुले में चक्रंमण करते रहे, सजग होकर चलते रहे। दूसरे भाग में अपने शयन कक्ष में दाहिने करवट सिंह शैया में लेटकर स्मृति-संप्रज्ञान (सतिसम्पजञ्ञं) के साथ विश्राम किया और तीसरे भाग में बैठकर मैत्री ध्यान भावना करते हुए करुणचित्त से सारे लोकों का अवलोकन किया। कहां-कहां कौन-कौनसा प्राणी अपने पूर्वकृत कुशल कर्मों के कारण अब मुक्त अवस्था प्राप्त करने योग्य है और उसे कहां, कैसे मार्गदर्शन दिया जाय। इस प्रकार रात्रि का तीसरा याम भी पूरा हुआ।

यों तीनों यामों की निर्धारित रात्रिचर्या पूरी करके भगवान मैत्रीभावना के ध्यान से उठकर बाहर आए तो देखा सूर्योदय के पूर्वाभास का संदेश लिए हुए ऊषा आकाश में ललाई बखेर रही है। प्रत्यूष के इस सुहावने समय में कुछ भिक्षु बाहर खुले में मंडप के नीचे बैठे हैं। कुछ बातें चल रही हैं। भगवान उनके समीप गए। सबने झुककर नमस्कार किया। भगवान एक बिछे हुए आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं से पूछा, "किस बात-चीत में लगे थे?"

भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "भगवान क्षमा करें। कुछ देर तो धर्मचर्चा चली, पर उसके बाद लोक-चर्चा में लग गए। भंते भगवान! जब नालंदा से चले थे तो परिव्राजक सुप्पिय और उसका अंतेवासी माणवक ब्रह्मदत्त दोनों हमारे पीछे पीछे आ रहे थे। सारे रास्ते उनका विवाद चलता रहा। एक बुद्ध, धर्म और संघ की बहुत प्रशंसा करता तो दूसरा उनकी तीव्र निंदा। जब हम आपके साथ राजागार में रात्रि-विश्राम के लिए ठहरे तो वे भी यहीं रुक गए। हमने देखा कि रात को भी उन्होंने विश्राम नहीं किया। सारी रात इसी में उलझे रहे।"

इस पर भगवान ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओ, कोई जब तुम्हारी निंदा करे तो न तुम्हें कुपित-क्रोधित होना चाहिए, न दुखी-दुर्मन। शांत चित्त से अपने आप को जांच लेना चाहिए कि क कहीं सचमुच हममें ऐसा दोष तो नहीं है। नहीं है तो हम निर्दोष हैं, इस तथ्य को स्वीकार कर लेना चाहिए। निंदा सुनकर कुपित होंगे, दुर्मन-दुखी होंगे, तो अपनी ही हानि कर लेंगे। अपनी ही प्रगति के लिए अंतराय पैदा कर लेंगे।

इसी प्रकार कोई तुम्हारी प्रशंसा करे तो उसे सुनकर आनंदित न होने लगें, हर्षोत्फुल्लित न होने लगें। शांत चित्त से अपने आप को जांचकर देख लेना चाहिए कि हममें सचमुच ऐसा सद्गुण है? अथवा यह व्यक्ति अतिशयोक्ति कर रहा है। यदि सद्गुण हो तो मात्र स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि आनंद और हर्ष से फूल उठोगे तो अपनी ही हानि कर लोगे। अपनी ही प्रगति के लिए अंतराय पैदा कर लोगे।"

***

आओ साधको, भगवान की इस धर्मवाणी को विस्तार से समझें और उसे धारण कर अपना हितसुख साध लें।

भगवान की बताई हुई साधना-विधि के साधक होने के नाते हम ख़ूब समझने लगे हैं कि शब्द तो शब्द है। निंदा हो या प्रशंसा, मात्र तरंगें ही तो हैं। परन्तु निंदा के शब्द जब हमारे कानों में स्पर्श करते हैं तो अपने पुराने संस्कारों से प्रभावित हुई संज्ञा उनका अधोमूल्यन करती है और इन शब्दों को बुरा मान लेने के कारण शरीर में अप्रिय, दुखद संवेदना उत्पन्न होती है. उसी के परिणाम स्वरूप अज्ञान अवस्था में हमारे मानस का एक हिस्सा दुर्मन हो उठता है। द्वेष, क्रोध, कोप की प्रतिक्रिया करने लगता है।

इसी प्रकार जब प्रशंसा के शब्द हमारे कानों को स्पर्श करते हैं तो यह संज्ञा उनका ऊर्ध्वमूल्यन करती है और उन शब्दों को अच्छा मान लेने से शरीर में प्रिय, सुखद संवेदना उत्पन्न होती है। उसी के परिणाम स्वरूप अज्ञान अवस्था में हमारे मानस का एक हिस्सा प्रफुल्लित हो उठता है और राग, लोभ, आसक्ति की प्रतिक्रिया करने लगता है।

प्रतिक्रिया चाहे द्वेष की करें या राग की, हमारा चित्त दूषित कर्म-संस्कारों के धुएं से धूमिल हो उठता है। वह सच्चाई को यथाभूत नहीं देख पाता। अविद्या से अभिभूत हो जाता है। अपनी समता खो बैठता है और विकार पर विकार जगते ही जाते हैं। हमारी विपश्यना छूट जाती है। राग-द्वेष से मुक्त होने के काम में अंतराय, बाधा उत्पन्न हो जाती है। पांच नीवरणों में से यह दोनों प्रमुख हैं, अतः इनके रहते समाधि अवस्था भी नहीं प्राप्त हो सकती। प्रज्ञा जगाकर राग-विहीन, द्वेष-विहीन हो सकना तो दूर रहा। निंदा या प्रशंसा सुनकर राग या द्वेष जगाते हैं तो हम औरों की हानि करें या न करें, अपनी हानि तो अवश्य करते हैं। अपनी प्रगति में अवश्य बाधा पैदा करते हैं।

अतः आओ साधको, इसे भलीभांति समझते हुए हम इससे बचें और धर्मपथ पर प्रगतिशील बने रहें और अपना मंगल साधते रहें।

मंगल मित्र,

स.ना.गो.